(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

वस्तुस्वातंत्र्य
और
निमित्तनैमित्तिक भाव

रचयिता—
अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक—
खेमचन्द, जैन सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

मंगल-तन्त्र

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

मैं ज्ञानमात्र हूँ, मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं, अतः निर्भार हूं।
मैं ज्ञानघन हूँ, मेरे स्वरूपमें अपूर्णता नहीं, अतः कृतार्थ हूं ।
मैं सहज आनंदमय हूँ, मेरे स्वरूपमें कष्ट नहीं, अतः स्वयं तृप्त हूँ ।

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

—:o:—

आत्म-रमण

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूं, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूँ ।।टेक।।
हूँ ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूँ सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण ।
हूँ सत्य सहज आनंदधाम, मैं सहजा०, मैं दर्शन० ।।१।।
हूँ खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं ।
परका न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं सहजा०, मैं दर्शन० ।।२।।
आऊं उतरूं रम लूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या ।
निजअनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सहजा०, मैं दर्शन० ।।३।।

—:o:—

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, ॐ जय जय अविकारी ।
हितकारी भयकारी, शाश्वत स्वविहारी ॥टेक॥ ॐ
काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥१॥ ॐ
हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी ॥२॥ ॐ
परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परमब्रह्मका दर्शन, चहुँ गति दुखहारी ॥३॥ ॐ
ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारो ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ॥४॥ ॐ
बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ॥५॥ ॐ

आत्म-कीर्तन

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ॥टेक॥
मैं वह हूँ, जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ रागविताम ॥१॥
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञाननिधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥
सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान।
निजको निज परको जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥३॥
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम। ४॥
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूँ अभिराम ॥५॥

वस्तुस्वातंत्र्य

और

निमित्तनैमित्तिक भाव

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

वस्तुस्वातन्त्र्य और निमित्तनैमित्तिक योग

(१) वस्तुस्वातन्त्र्य और निमित्तनैमित्तिक योग की भूमिका—सम्यग्दृष्टि पुरुष जो भी निरखता है, वस्तुस्वरूप को देखता है, घटना आदिका निर्णय करता है तो उसकी एक ही प्रकृति है। इस ढंग से निर्णय करता, इस विधिसे निरखता है कि जिसमें विकार से हटने की प्रेरणा हो, और स्वभावमें लगने की उमंग हो। ज्ञानीका जीवन में केवल एक ही रटन रहेगा। उसे अब संसारसे कुछ प्रयोजन नहीं रहा और उसको दो ढंगों में निरखने की बात है—(१) वस्तुस्वातंत्र्य और (२) निमित्तनैमित्तिक योग।

प्रत्येक वस्तु स्वयं सत् है, उत्पादव्ययध्रौव्यमय है। उसमें जो परिणमन होता है वह उसकी ही पर्याय है और ऐसे प्रतिसमय पर्याय होते रहते हैं और होते ही चले जाते हैं याने पदार्थ का बनना, बिगड़ना और बना रहना यह सतत रहता है और ऐसा होना यह वस्तुका स्वरूप है। किसी भी वस्तुमें अपने स्वरूप के विरुद्ध परिणम जाना यह स्वभाव नहीं पड़ा हुआ है। तो अब इस दृष्टिसे आत्माको देखें तो आत्मा है और सतत परिणमता रहता है। वह उपयोगस्वरूप है। जीव का लक्षण उपयोग बताया है। इस प्रसंगमें एक बात और जानें कि मोक्षशास्त्रके द्वितीय अध्याय में जीवके ५ स्वतत्त्व कहे। तो शंका यह हो सकती है कि तब वही लक्षण क्यों न हो गया? स्वतत्त्वके कहनेसे ही जीव जान लिया गया, फिर 'उपयोगो लक्षण' अलगसे सूत्र क्यों कहा गया? तो वहाँ बात यह है कि स्वतत्त्व जीव का लक्षण नहीं, किन्तु वह जीव है, वह सब लक्ष्य है और उसका लक्षण उपयोग से किया गया है। जीव उपयोगस्वरूप है। और जीव जो कुछ करता है वह उपयोगको करता है, जानता देखता रहता है, पर जीवमें यह स्वभाव नहीं पड़ा है कि वह अपने आप से आप ही स्वयं निमित्त और उपादान रहकर विकार अपनेमें बनाये, राग करे, ऐसा प्रयोजन परिणमनेका किसी द्रव्य में स्वभाव नही है।

(२) निमित्तनैमित्तिक योग होनेपर भी वस्तुस्वातन्त्र्य

की दृढ़ता--विकारपरिणमनकी सामर्थ्य तो है आत्मामें और वह है पर्याय योग्यता में, मगर स्वयं ही, अपने आप ही, स्वयं, पर-निरपेक्ष होकर याने स्वयं निमित्त होकर विकार रूप परिणमे, ऐसा उसमें स्वभाव नहीं है। जैसे समयसार में स्पष्ट खोला है बंधाधिकारमें कि जैसे स्फटिकमणि स्वयं परिणमन स्वभाव वाला है, परन्तु है स्वयं शुद्ध स्वभाव, इस कारण वह स्वयं लालिमा रूप परिणमनेमें निमित्त नहीं होता। कोई भी पदार्थ खुद ही विकार परिणममें निमित्त नहीं होता, तो ऐसी स्थिति में बात बन क्या रही है कि वहाँ परद्रव्य जो स्वयं लालिमा रूप है, उसके द्वारा ही स्फटिकमणि लाल रूप परिणमायी जा रही है, ये शब्द हम बोल रहे अमृतचंद्र जी सूरिके, पर वहाँ इतना सम्हलकर जानना कि उस परपदार्थ के सान्निध्य में यह रागरूप परिणम रहा। आचार्योंने कठिन शब्द यों बोला, क्या बोला कि परद्रव्यके द्वारा ही स्फटिक लाल रूपमें परिणम रहा, इतने आदेशसे। वहाँ आचार्यने यों कहा कि यह जान जायें कि आत्मा स्वयं शुद्ध स्वभाव है और वह ऐसा ही निमित्त पाकर विकाररूप परिणमता। इतनी बात समझाने के लिए उन्होंने इतने कठिन शब्दों में कहा है। खैर, भाव लेना इस प्रकार को आत्मा भी स्वयं परिणमन स्वभाव वाला है, किन्तु स्वयं शुद्ध स्वभाव है अतएव खुद निमित्त नहीं बनता रागादि विकारका। तो वहाँ क्या होता है? तो अमृतचन्द्र जी सूरिके

शब्दोंमें और कुन्दकुन्दाचार्यके शब्दोंमें तो यह बात वहाँ लिखी हुई है कि परद्रव्य के द्वारा ही वह रागादि रूप परिणमाया जाता है। वह इस निर्णयसे कहा गया है कि खुदके स्वयंको विकारमें निमित्त न मान ले कोई। भाव वहाँ यह है कि उस रागरूप याने लाल पदार्थके सान्निध्य में वह स्फटिक रागरूप याने लाल बिम्बरूप परिणम रहा है। बात यहाँ यह जानना कि कोई पदार्थ स्वय ही शुद्ध स्वभाव होनेके कारण अपने विकारमें निमित्त नहीं होता। तो इसमें स्वतंत्रता यह आयी कि वस्तु अपने आपमें तो शुद्धस्वरूप ही परिणमेगा, उसमें ही वह स्वतंत्र है, शुद्धरूप परिणमता आयगा। इसमें किसी बाह्य की आवश्यकता ही नहीं। एक कालद्रव्य है, सो सबका साधारण निमित्त है। तो वस्तुमें यह स्वातन्त्र्य है कि वह अपने आपमें परिणमने काम लिए हुए है, परिणम रहा है, पर कोई भी वस्तु विकार रूप परिणमे तो स्वयं ही निमित्त नहीं बनता, वहाँ परसंग ही निमित्त है।

(३) निमित्तनैमित्तिक योग और वस्तुस्वातन्त्र्य दोनोंक एकत्र दर्शन—जैसे कलश में बताया न जातु रागादि निमि भावमात्मत्मनो याति यथाकंकान्तः तस्मिन्निमित्तं परसं एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत्। विकार रूप परिणमने निमित्त परसंग है, यह हो वस्तुस्वभाव है। उन कथनोंमें खल तावद्, एव, स्वभाव—ये चार शब्द देकर और वहाँ ब

दृढ़ता से सिद्ध किया गया है। तो इन दोनों वक्तव्यों से तत्त्व क्या निकला कि जीव है, परिणमने का स्वरूप रख रहा है, परिणमता जीव है। अब अनादि से ही तो यह व्यवस्था है कि यह जीव द्रव्य कर्म उपाधि से बद्ध है। अनादि से ही यह पर्याय में इसकी अशुद्धता चली आ रही है तो ऐसा अशुद्ध उपादान वाला जीव परिणमने की योग्यता रख रहा। अब उसे जिस प्रकार का वातावरण मिला उस प्रकार वह परिणम गया, यह परिणमता ही चला जाता है।

जैसे कोई मनुष्य किसी सड़क से जा रहा, कहीं सड़क पर वृक्ष हैं, कहीं वृक्ष नहीं हैं तो यह वृक्ष के नीचे से गुजरा तो शरीर छायारूप परिणम गया। उस निर्वृक्ष वातावरण में गुजरा, वहाँ प्रकाशरूप परिणम रहा। यह तो परिणमेगा, अब योग्यता जैसी अशुद्ध है उस रूप परिणमेगा। मगर स्वयं ही निमित्त न बन जायगा, ऐसी बात निरखने से हमको प्रेरणा क्या मिली कि ये जो रागादिक विकार हैं, सो ये तेरे ही निमित्त से नहीं बनते, तू ही उपादान हो, तू ही निमित्त हो और बन गया हो तो ये कभी मिट न सकेंगे। तो यह तो बड़ी भली बात है कि परिणमता तो तू है, मगर उस वातावरण में परिणमे, उस निमित्त सन्निधान में परिणमे तो यह परिणमन टल सकता है, मिट सकता है, मिट जायगा और मिटता ही है।

(४) निश्चयनय से विकार का आधार योग्यता— तत्त्वज्ञान न होने से विकारवश होकर बंधता जाता है, इस-लिए लग रहा ऐसा कि राग मिट नहीं रहा, मगर जिस समय में जो परिणाम है वह परिणाम हुआ और मिट गया। यहाँ पर भी रागादिक परिणमनों का ताँता लगा है, वहाँ पर भी निमित्तभूत प्रकृतियों के उदय का ताँता चल रहा है। जब एक ही वस्तु को निरखते हैं, निश्चयनय का नियंत्रण है कि एक ही वस्तु को देखना और वहीं जो चाहे देखना, एक में एक को देखना, नियंत्रण है, मगर अशुद्ध पर्याय को निरखना तो वह अशुद्ध निश्चयनय कहलाता, शुद्ध पर्याय को निरखना तो शुद्ध निश्चयनय कहलाता और स्वभाव को निरखने में परमशुद्ध निश्चयनय कहलाता, मगर निश्चयनय का नियंत्रण इतना ही है कि एक में ही एक को देखना। तो इस दृष्टि से जब देखा तो आत्मा को ही देखा, उपपत्ति अब नहीं दिख रही, अब तो केवल एक को ही देख रहे, तो इसमें जो राग हुआ है, उसकी योग्यता से ही हुआ, उसके परिणमन से ही तो हुआ। उसमें किसी दूसरी वस्तु का प्रवेश नहीं है, वह अपने आप में परिणमता चला जा रहा है, यह बात निर्णय में आयी।

(५) उपपत्ति दृष्टि से विकार की नैमित्तिकता और नैमित्तिकता बोध में वस्तु स्वातन्त्र्य का दर्शन—उपपत्ति जब विचारते हैं कि ये विकार जब यों ही हो गए स्वभावतः तो जैसे चैतन्य कभी मिटेगा नहीं, ऐसे ही विकार भी कभी मिटेंगे

नहीं, पर ये विकार चैतन्यवृत्ति की तरह नहीं बन रहे, वे निमित्त सन्निधान में हुए हैं, इसकी क्या प्रतिष्ठा है इस जीव में। ये औपाधिक हैं, नैमित्तिक हैं, एक्सीडेण्टल हैं, मेरे स्वरूप नहीं, इनमें मैं न लगूं, इनसे मेरा कुछ भी सम्बंध नहीं और साथ ही वस्तु स्वातंत्र्य भी नजर आया। मेरा शुद्ध स्वभाव यह है, मैं ही तो इस रूप परिणम रहा था। कोई दूसरा तो नहीं परिणम रहा था। अगर निमित्त अपनी परिणति से मेरे को रागी बनाता होता या निमित्त का कुछ इसमें प्रवेश होता, निमित्त की करतूत होती तो ये विकार मिट न सकते थे, क्योंकि मैं तो परिणमा नहीं, निमित्त ने ही ऐसा कर दिया तो वहाँ भी विवशता थी तो कायरता का मिटाना यह वस्तु स्वातंत्र्य ने बताया। तुम कायर मत हो कि अब मैं क्या करूँ, कर्म ही जब मिटायें तब मिटेंगे। अरे परिणमते तो तुम हो। कुछ अपने आप में सोचना तो चाहिये। अपने शुद्ध स्वरूप की भावना करें, उनके मिटने का यह ही ढंग है। कर्मों पर दृष्टि दें, निमित्त पर दृष्टि दें और उसको नाशने की भावना करें। जैसे पूजा करते हुए कहते ना—अष्टकर्मदहनाय धूपं, जन्म-जरामृत्युविनाशनाय जलं याने अष्टकर्मों का दहन करने के लिए मैं धूप खेता हूँ। तो न तो वह दहन हुआ, न कर्म मिटे, वह तो भक्ति की एक भावना है कि अष्टकर्म ये दुःख के निमित्त हैं, ये जल जाय, पर यों न बोलकर अपने स्वरूप को

सम्हालें तो वह स्वयं बल है। जहाँ-जहाँ भी उपशम, क्षय क्षयोपशम कुछ भी गड़बड़ी हुई, कर्म में दुर्गति हुई है तो उसके बल से हुई है कि हमने अपने आपके ज्ञानबल को सम्हाला, बस जब उसको आदर न मिले तो वह रह न सकेगा।

(६) नैमित्तिकता के बोध से विकारनाश के निमित्तभूत स्वभावाश्रय के उपाय की सुगमता—महिमान को यदि आदर मिले तो वह कई दिन घर पर रहे और यदि आदर न मिले तो वह कैसे टिके घर ? और वह महिमान ही तो है याने घर में जिसकी कुछ महिमा नहीं। कैसा ही ऊँचा महिमान घर आ गया, पर क्या आप उसे अपने बच्चे की तरह अपना सर्वस्व समझ सौंप सकते ? नहीं सौंप सकते। उसकी कोई महिमा नहीं। हाँ, यदि वह बेशर्म है, उसका आदर नही किया जा रहा, फिर भी वह रह रहा तो उसकी बात और है, सो भी कब तक रहेगा ? सो आदर न किया जाने पर महिमान टिक नहीं सकता। तो ऐसे ही समझो कि इन रागादिक भावों का जब आदर नहीं है, क्योंकि ये विकार मेरे कुल के नहीं हैं, नैमित्तिक हैं, महिमान हैं, सो आदर नहीं है विकार का और आदर है शुद्ध स्वरूप का तो ये रागभाव नहीं टिक सकते। वह कर्मसत्त्व टिक नहीं सकता। कर्मसत्त्व भी शुद्ध भाव के कारण निमित्तनैमित्तिक योग से नहीं टिक पाते। और रागादिक भाव ? एक म्यान में दो तलवार कैसे

समायेंगी ? अविकार स्वभाव को ग्रहण करे और राग को ग्रहण करे, ये दो बातें तो नहीं आ सकतीं। इसलिए जब रागविकार को ग्रहण नहीं कर रहा तो राग का तुरन्त तिरस्कार है। वे कर्म चाहे धीरे-धीरे मिटें, मगर ये रागादिक विकार तो तुरन्त तिरस्कृत हैं। तो इस कल्याणार्थी का केवल एक यह ही उद्यम है कि वह अपने में स्वरूप को देखता है और वहाँ परखता है कि मेरे स्वभाव में नहीं बसा यह कि ये विकार हों, मेरा तो अविकार स्वभाव है, और मेरा अविकार स्वभाव है, यह निर्णय तब बने जब यह जानें कि ये विकार नैमित्तिक, औपाधिक, परभाव हैं।

(७) निमित्त की अकिञ्चित्करता व निमित्त के सन्निधान में ही विकार की उपपत्ति की संभवता दोनों का एकत्र दर्शन—निमित्त अकिञ्चित्कर है और उसका किसी भी तरह उसमें प्रवेश याने दखल नहीं है, बात यह सही है, पर उसको और अधिक अतिशय से यों कहना कि जिसमें निमित्त का कुछ सन्निधान भी आवश्यक नहीं है, यहाँ तक जाहिर हो तो इतना अधिक कहने का प्रयास जिसने भी किया, सो क्यों किया गया ? किया यों गया कि किसी भी ढंग में कोई निमित्त को कर्ता न समझे कि निमित्त उस कार्य का कर्ता है, इसलिए हुआ, मगर यह निश्चित है कि अगर निमित्त सन्निधान बिना जो भी बने वह शुद्ध परिणाम ही बनेगा, वह

स्वभाव परिणाम ही बनेगा और वह मिट नहीं सकता। जो स्वयं सहज होता रहे वह मिट नहीं सकता। तो हमको यहाँ उन सर्व प्रसंगों में शिक्षा यह लेनी है कि ये विकार हेय हैं, दुःखरूप हैं, दुःखफल हैं, मेरे स्वरूप नहीं हैं, मेरे में कलंक हैं, मेरे स्वभाव में बसे हुए नहीं हैं, ये आगंतुक हैं। इनसे प्रीति करने में काम नहीं और बन सके किसी से अत्यन्त उपेक्षा और निज स्वभाव में ही मग्नता बन सके तो समझिये बस वह जीव सदा के लिए संसार-संकटों से छूट गया। बात यों निरखना कि निमित्त सन्निधान में विकार तो हो रहे, पर निमित्तभूत पदार्थ केवल अपने में अपना ही परिणमन कर रहा। वह मजबूत है, खुद की बात में वह मजबूत है, अपने ही ढंग में वह मौजूद है, वह अपने में से कुछ भी निकालकर या कुछ भी बात वहाँ नहीं डाल रहा।

(८) निमित्त के सन्निधान में उपादान का अपना प्रभाव– अब प्रभाव की बात देखो—वस्तु प्रभावित होती है अनुरूप वातावरण को पाकर। इससे बढ़कर आपको और क्या दृष्टांत मिलेगा कि यह सूर्य का उदय है और यहाँ यह धूप कैसी फैली हुई है? सहसा अगर कोई यह कहे कि यह सूर्य का प्रकाश नहीं, तो कोई लोग मानने को तैयार न होंगे। अगर सयुक्तिक देखें तो सूर्य कितना है, उसका यह तो निर्णय बनावें याने वह कितनी जगह में रहता, कितने प्रदेश में है, यह बात

बतलावो। बतलाते हैं कि करीब २ हजार कोश का उसका क्षेत्र है, तो उसका रंग, उसका रूप, उसका रस, उसकी ज्योति सब कुछ उसमें ही रहेगी। उसके बाहर कुछ नहीं आता। मगर यह स्पष्ट दिख तो रहा है प्रकाश।

अरे भाई सूर्य इतना प्रकाशमान है, स्वयं प्रकाशमान है कि उसको प्रकाशित होने में निमित्त का सन्निधान भी नहीं चाहिये। वह स्वयं अपने आप में इतना प्रकाशमान है। आखिर वह पुद्गल ही तो है और ये फर्श, जमीन आदिक इन पुद्गलों में क्या इतनी भी योग्यता नहीं है कि वे सूर्य के सन्निधान को पाकर खुद प्रकाशमान हो जायें? वे हैं अपने आप प्रकाशमान और ये होते हैं निमित्त सन्निधान में प्रकाशमान, इतना ही तो अन्तर है, मगर जैसे उसके प्रदेश में रहने वाला प्रकाश उस सूर्य को निज की चीज है, ऐसे ही इस पृथ्वीरूप रहने वाला प्रकाश भी इस पृथ्वी की निज की चीज है। यह प्रकाश सूर्य का नहीं है। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक योग है कि वह इतनी दूर है कि वहाँ से यहाँ कुछ आता नहीं और उसके सन्निधान बिना प्रकाश पाया नहीं। तब ही तो जब तेज धूप लग जाती है किसी चीज में और वह पिघलने लगती है तो उसे वहाँ से उठाकर घर में रख लेते हैं। समझ सब बाकी है कि पिघल यह ही चीज रही, संतप्त यह ही वस्तु हो रही, पर इस योग में हो रहा सो उस संतप्त उपादान वस्तु को हटा दिया।

(६) नैमित्तिक रागादिविकार को हटाने का उपाय आत्मस्वभावाश्रय—इन कर्मों को हटाने का दूसरा जरिया नहीं है। वह एक ही उपाय है प्रज्ञा। उसके ही बल से अपने आप में स्वभावरूप अनुभव बनाया—मैं ऐसा विशुद्ध चैतन्य-स्वभावमात्र हूँ, उससे चिकनाई न मिलेगी कर्मों को, अपने आप बिखर जायेंगे। जैसे गीली धोती को सूखने के लिए खूँटियों में बाँध दिया, किसी तरह से वह नीचे गिर गई, उसमें धूल चिपट गई तो विवेकी पुरुष कहते हैं कि भाई हाथ से इस धूल को न झड़ावो, इसे यों ही सूखने डाल दो। जब सूख जायगी तो एक झटके में यह सब धूल झड़ जायगी। आखिर वह यों ही उपाय करता है। सूख जाने पर सारी धूल झड़ जाती है। ऐसे ही ये कर्म तो रागादिक के कारण एक क्षेत्रावगाह बँधे हैं, वे रागद्वेष मिटें तो वहाँ बंध कैसे रह सकता ? वे तो झड़ ही जायेंगे। तो रागद्वेष कैसे मिटें ? क्या किसी परवस्तु का आश्रय करके, उसका ख्याल करके ये राग-द्वेष मिटेंगे ? अरे इस तरह से न मिटेंगे। इस रागद्वेष रहित 'अंतस्तत्त्व में यह मैं हूँ' ऐसा स्वीकार, ऐसी ही भावना, ऐसा ही प्रयोग और ऐसा ही उपयोग बने तो ये रागादिक मिटेंगे। इसका दूसरा कोई उपाय नहीं है। तो समझो सब कुछ आगम में पढ़ियेगा। निष्कर्ष यह निकालें कि विकारों से हटने और स्वभाव में लगने के लिए यह सब निर्देश है। निमित्तनैमित्तिक योग का वर्णन निमित्त से हटने और स्व-

भावमें लगने के लिए है। वहाँ कहीं निमित्तको उपादान में चढ़ाने के लिए नहीं है, उपदेश, किन्तु उससे हमें लाभ लेना है कि हम इससे हटें, यह मेरे लिए लाभदायक नहीं। मैं अपनेमें रहूँ।

(१०) समकाल होनेपर भी निमित्त व नैमित्तिककी पहिचानका वाक्य में सुगम तरीका—बात दोनों एक साथ चल रहीं। निमित्त और नैमित्तिक समकालमें, पर उस समकालके होनेपर भी एक दूसरेका कर्ता नहीं है, और वहाँ निमित्तनैमित्तिक व्यवस्था सही है। जैसे रागप्रकृतिका उदय हुआ, आत्मा में रागपरिणाम हुआ तो रागपरिणाम होना निमित्त बने और रागप्रकृतिका उदय होना नैमित्तिक बने, यह बात नहीं है। रागप्रकृतिका उदय निमित्त है, रागभाव नैमित्तिक है, ऐसी ही वहाँ व्यवस्था है, और उसकी सीधी पहिचान यह है कि जब आप वाक्य बोलेंगे तो निमित्तके साथ 'जब' शब्द आयगा और नैमित्तिकके साथ 'तब' शब्द आयगा। एक साथ हो रहे हैं। वहाँ अन्तर नहीं है समयका, मगर यों ही बोल-चाल सीधी चलेगी कि जब रागप्रकृतिका उदय होता है तो जीवमें रागपरिणाम होता है। पुद्गल पुद्गलमें घटायें, किसी भी प्रसंगमें घटायें, 'जब' और 'तब' ये शब्द निमित्तनैमित्तिककी पहिचान कराते हैं। जब अग्निका संयोग पाया तब रोटी सिक गई। तो 'जब' शब्द अग्नि संयोगमें लगा वह निमित्त है और रोटी

सिक गई, यह नैमित्तिक है। कोई ऐसा प्रयोग नहीं करता कि जब रोटी सिकी तब अग्निका संयोग हाजिर हो गया। यह प्रक्रिया ही ऐसी है कि जिससे निमित्तनैमित्तिककी कुंजी रूप से पहिचान हो जाय।

'जब' और 'तब' शब्दके प्रयोगमें समझका संतुलन रखना। कोई भी निमित्तभूत पदार्थ अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, प्रभाव कुछ भी बात कह लो, यह कुछ भी नहीं डालता उपादानमें। मगर उपादानमें ही ऐसी कला है कि वह ऐसे मजबूत निमित्त के सन्निधान में अपना विकाररूप परिणमन करता है, और निमित्तका सन्निधान जहाँ नहीं है वहाँ नहीं करता है। वहाँ विकारपरिणमनकी उपादानमें इस ही ढंगसे कला पड़ी है। वहाँ वस्तुस्वातंत्र्य निमित्तनैमित्तिक योग दोनों ही इस ज्ञानीको सही ढंगसे दिख रहे। ऐसी स्थिति में वस्तुस्वातंत्र्य मिट जायगा। अगर निमित्तनैमित्तिक योग की बात छोड़ दें सो ऐसा सोचना यह तो ज्ञानकी एक निर्मलता है। इसी प्रकार निमित्तनैमित्तिक योग मिटनेकी आशंकासे वस्तुस्वातंत्र्य न मानना ज्ञानकी निर्बलता है। निमित्तनैमित्तिक योग होने पर भी वस्तुस्वातंत्र्य मिटा नहीं, क्योंकि परिणमा वह उपादान अपनी ही परिणति से। उसका षट्कारकत्वमें उस उपादानमें ही पड़ा हुआ है। बाकी तो उपचारसे भले ही बोलें भिन्न द्रव्यमें षट्कारकता, पर वस्तुतः स्वयं ही वह वस्तु अपनेमें

अपने रूपसे परिणमती, मगर यहाँ विकार परिणाम अनुकूल निमित्तके अभावमें हो नहीं सकता। यह ही तो बल मिला ज्ञानीको कि एक उमंग जगी कि ये नैमित्तिक हैं, ये जल्दी हटाये जा सकते, क्योंकि इनका कोई वारिस नहीं है।

(११) रागद्वेषादि विकारोंका लावारिसपना और विकारों से सुगम निवृत्ति—जैसे यहाँ कोई-कोई ताँगे वाले सड़क पर खेलते हुए बच्चेको देखकर कह देते ना—अरे भाग यहाँसे तू लावारिस है क्या, फालतू है क्या, तो ऐसे ही ये रागादिक विकार लावारिस हैं। कहाँ हुए हैं? हुए तो उपादानमें, मगर ये स्वभाव से नही हैं। आ पड़े हैं ये रागभाव। उन्हें अपनाया, पुचकारा, उनकी संतति बढ़ाया निमित्त सन्निधानमें ही, पर निमित्तका उससे कुछ मतलब नहीं, निमित्तका परिणमन नहीं, निमित्तकी कोई वस्तु नहीं तो फिर निमित्त उसे कैसे जिन्दा रख सके कि तू रहा कर जिन्दा? तो ये विकार भाव ऐसे लावारिस हैं, इसीलिए बताया है कि रागादिक भाव होते क्यों हैं? जब लावारिस होना ही नहीं चाहते तो फिर क्यों होते? तो उसकी खान अज्ञान बतायी गई। अज्ञान से होते हैं। यहाँ नहीं, वहाँ नहीं, स्वभाव में नहीं, निमित्तमें नहीं और हो तो रहे हैं नैमित्तिक विकार। ऐसा तथ्य जो पहिचानता है उसे, विकारसे हटकर स्वभावमें लगनेमें सुगमता है।

—:*:—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री 'सहजानन्द' महाराज
द्वारा रचित

आत्मभक्ति

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे ।
तेरी भक्तिमें क्षण जायें सारे ॥टेक॥
ज्ञानसे ज्ञानमें ज्ञान ही हो, कल्पनाओंका इकदम विलय हो ।
भ्राँतिका नाश हो, शांतिका वास हो, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥१॥
सर्व गतियोंमें रह गतिसे न्यारे, सर्व भावोंमें रह उनसे न्यारे ।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाहिं विरत, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥२॥
सिद्धि जिसने भी अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई ।
मेरे संकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ॥३॥
देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्ययके भेदोंसे पारे ।
नित्य अंतः अचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे। तेरी०॥४॥
आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयोंमें नित श्रेय तू है ।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ॥५॥

पुस्तकें मंगाने के पते :—

खेमचन्द जैन

मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ० प्र०)

सुमेरचन्द जैन

मन्त्री, भारतवर्षीय वर्णी जैन साहित्य मन्दिर

मंत्री निवास, १५, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर